वर्षम् - ०४ अङ्कः – ०४ शोधज्योतिः
जनवरी – दिसम्बर, 2022 ISSN-2350-0700

प्रत्याहार

डॉ. कश्यप एम. त्रिवेदी[१]

२१ जून को 'योग' दिवस के रूप में मनाने की संयुक्त राष्ट संघ की घोषणा के बाद, लोगों में योग के बारे में अधिक जागृति आई है। अतः लोग आसन, प्राणायामादि बाह्य क्रियारूप योग के आचरण में अनुरक्त होने लगे हैं। इनसे उन्हें शारीरिक और मानसिक लाभ जरूर प्राप्त होता है, अपितु विशेष रूप से उनका लाभ प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को योग के प्रत्येक अङ्ग के बारे में जानकारी प्राप्त करके, आचरण करने का प्रयत्न करना चाहिये। योग के आठ अङ्गों में से एक 'प्रत्याहार' की परिभाषा – चर्चा यहाँ पतञ्जलि कृत योगसूत्र को केन्द्र में रखकर करनी है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।[२]

इन आठ अङ्गों में से प्रत्याहार की परिभाषा निम्नोक्त है - स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।[३] अर्थात् इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से संयोग न करके, मानों चित्त के स्वरुप का अनुसरण करती हैं, उसको इन्द्रियों का प्रत्याहार कहते हैं।

व्यासभाष्य में मधुमक्षिका का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार अपना राजा चला जाता है तब प्रत्येक मक्षिका चली जाती है, बैठता है तब बैठती है। उसी प्रकार इन्द्रियों का अपने विषयों से असंयोग होने से, चित्त अपने स्वरूप का अनुकरण करता है, अतः चित्त का निरोध होता है। "यथा मधुकरराजमक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति निविशमानमनुनिवेशन्ते तथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानीत्येष प्रत्याहारः।"[४] वाचस्पति मिश्र "तत्त्ववैशारदी" में विष्णुपुराण का उद्धरण देते हुए यही बात करते हैं –

शब्दादिष्वनुषक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित्।
कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः।।[५]

पूज्यपाद कृपानाथ दर्शाते हैं कि श्रोत्रादि इन्द्रियों को अपने-अपने रागद्वेषात्मक स्वाभाविक 1

---

[१] *संस्कृत विभाग,के. एस. के. वी. कच्छ युनिवर्सिटी, भुज-कच्छ ३७०००१, मो. ९४२७४ ०७४५१*

[२] *पातञ्जल योगसूत्र – २.२९*

[३] *पातञ्जल योगसूत्र २.५०*

[४] *पातञ्जल योगसूत्र – व्यासभाष्य २.५४*

[५] *तत्त्ववैशारदी, २.५४*

है।[६] वशिष्ठ संहिता में भी इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से प्रयत्नपूर्वक चित्त की ओर आकृष्ट करना प्रत्याहार बताया गया है–

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः।
बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।।[७]

बलपूर्वक इन्द्रियों को आत्मा की ओर आकृष्ट करना है, लेकिन ये बल विवेकपूर्ण तरीके से, धीरे धीरे, निरंतर अर्थात् प्रतिदिन करना है। क्योंकि इन्द्रियों को बलपूर्वक और अविवेक से अपने विषयों में से आकृष्ट करते हैं, तब मन आदि इन्द्रियाँ विकारमय बनकर रोग की भोग हो जाती हैं। स्वास्थ्य पर विपरीत असर होता है, अतः भगवद्गीता में मन सहित इन्द्रियों को धीरे धीरे बुद्धिपूर्वक आकृष्ट करने को कहा है –

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चदपि चिन्तयेत्।।[८]

मन चञ्चल है, बलपूर्वक इन्द्रियों को खींच ले जाता है, अतः वायु की तरह उसको स्थिर करना दुष्कर है। इन्द्रियाँ अत्यंत प्रबल हैं, अतः उनको स्थिर करने का प्रयत्न करने वाले मनुष्य के मन को भी बलपूर्वक वश में कर लेती हैं। अतः धीरे धीरे, अभ्यासपूर्वक और वैराग्य से मन को स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिये -

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।[९]

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।[१०]

---

[६] *पूज्यपाद श्रीमन्नथुराम शर्मा, श्री योगकौस्तुभ, आवृत्ति -५*

[७] *स्वामी देवव्रत, अष्टांग योग, पृ.३२७*

[८] *श्रीमद्भगवद्गीता, ६.२५*

[९] *श्रीमद्भगवद्गीता, २.६०*

[१०] *श्रीमद्भगवद्गीता, ६.३५*

जो इन्द्रियों को स्थिर करने के लिए कच्छप की तरह अपने–अपने विषयों से इन्द्रियों को वापस खींचकर अपने में स्थिर करके परमात्मरूप उत्कृष्ट भक्तिरस में स्थिर हो जाता है, उसकी प्रज्ञा स्थिर होती है -

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।[११]

जाबालदर्शनोपनिषद् "प्रत्याहार" की साधना विधि में सर्वत्र ब्रह्मदृष्टि रखने का सुझाव देता है। यत्पश्यति तु तत्सर्वं ब्रह्म पश्यन्समाहितः।[१२]

कोई भी अच्छे या बुरे पदार्थ को देखकर स्थिर रहना, इन सब में परमात्मा ही स्थित है, परमात्मा की रचना है, यह समझकर रागद्वेषादि की भावना न करना ही प्रत्याहार है। हमारे प्रत्येक शुभ–अशुभ कर्म को परमात्मा देख रहे हैं, यह समझकर कर्म करना प्रत्याहार है -

यद्यच्छुद्धमशुद्धं वा करोत्यामरणान्तिकम्।
तत्सर्वं ब्रह्मणे कुर्यात्प्रत्याहारः स उच्यते।।[१३]

प्रत्येक कर्म परमात्मा को अर्पण करने की भावना से ही करें। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम अशुभ कर्म करके परमात्मा को अर्पण करें। वास्तव में परमतत्त्व की सत्ता का स्वीकार करके उनको साक्षी रखते हुए, अशुभ कर्म हो ही नहीं सकता। यह कर्म ब्रह्मार्पण की भावना से करे और यह भावना सदैव बनी रहे वैसा प्रयत्न करे, वही प्रत्याहार सिद्धि का सर्वोत्तम उपाय है। निष्काम भाव से कर्म करना भी प्रत्याहार ही है। शास्त्र विहित नित्य कर्म भी फ़लाकांक्षा रहित करना ही प्रत्याहार है।[१४]

वायु को एक स्थान से दूसरे स्थान में स्थिर करना; अर्थात् दंतमूल से वायु को खींचकर कंठ में, कंठ से हृदय में, वहाँ से नाभिस्थान में, नाभि से कुण्डलिनी में, वहाँ से मूलाधार में स्थिर करना। पुनः वहाँ से कटि के दोनों भाग में, वहाँ से जाँघ (जानु) के मध्यभाग में, जानु से घुटनों में, वहाँ से पिंडली में, वहाँ से पैर में, पैर से अंगुष्ठ में वायु को स्थिर करने को ही प्रत्याहार में रत महात्माओं ने प्रत्याहार कहा

---

[११] *श्रीमद्भगवद्गीता, २.५९*

[१२] *जाबालदर्शनोपनिषद् -७.१.२*

[१३] *वही, ७.१ ३-४*

[१४] *वही, ७ .१*

है।[१५] यही बात सिद्ध हठयोगी पूज्यपाद श्रीमन्नथुराम शर्मा ने अपने "श्री योगकौस्तुभ" में कही है। अपने अनुभव से दर्शाते हैं कि, "अंगुष्ठ से प्रारंभ करके ब्रह्मरन्ध्र में वायु को ले आना और वहाँ स्थिर करके पुनः अंगुष्ठ में ले जाना उसको प्रत्याहार कहते हैं।"[१६]

स्वस्तिक आसन में स्थिरचित्त बैठकर नासिका के दोनों छिद्रों से वायु को आकृष्ट करके पैर से मस्तक पर्यंत धारण करना, दोनों पैर, मूलाधार, नाभिचक्र, हृदय के मध्यभाग में, कंठ–मूल, तालु, भ्रू के मध्यभाग, कपाल के मध्यभाग में वायु को धारण करना धारणात्मक प्रत्याहार है। जाबालदर्शनोपनिषद् इस प्रत्याहार को सर्वरोगहर और भवरोगनाशक बताता है -

सर्वपापानि नश्यन्ति भवरोगश्च सुव्रत।
नासाभ्यां वायुमाकृष्य निश्चलः स्वस्तिकासनः।।
नाभिकन्दे च हृन्मध्ये कण्ठमूले च तालुके।
भ्रुवोर्मध्ये ललाटे च तथा मूर्धनि धारयेत्।।[१७]

इन सारी बातों का सारांश यह है कि अपने मूलस्वरूप में स्थिर होना प्रत्याहार है। अपितु मूलस्वरूप में स्थिर होने के लिए मन और बुद्धि का स्थिर होना आवश्यक है, उनको स्थिर करने के लिए वायु पर नियंत्रण आवश्यक है। वायु पर नियंत्रण के लिए प्राणायाम, मिताहार और ध्यान आवश्यक है। इन सबके लिए प्रत्याहार आवश्यक है। वायु की स्थिरता से ही कुंडलिनी जागृत हो सकती है और परम तत्त्व का अनुभव हो सकता है।

प्रत्याहार का फ़ल दर्शाते हुए महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि "ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।"[१८] अर्थात् प्रत्याहार से इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। भाष्यकार व्यासजी भिन्न-भिन्न आचार्यों के मत प्रदर्शित करके जैगिषव्य ऋषि के मत को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि चित्त एकाग्र होने से इन्द्रियों की अप्रवृत्ति इन्द्रियजय है। उससे पूर्ण वश्यता प्राप्त होती है। क्योंकि चित्त के निरोध से इन्द्रियाँ भी निरुद्ध होती हैं।[१९]

महर्षि दयानंद सरस्वती प्रत्याहार का फ़ल दर्शाते हुए कहते हैं कि "जितेन्द्रिय मनुष्य जिस जगह पर अपना मन लगाना चाहे वहाँ लगा सकते हैं, स्थिर कर सकते हैं। बाद में उनको ज्ञान प्राप्त हो जाने से सत्य में ही प्रीति रहती है, असत्य में नहीं। उसके बाद वह मोक्ष का भागी बनता है।[२०]

---

[१५] *वही ७.१-५-९*

[१६] *श्री योगकौस्तुभ, पृ.२४२*

[१७] *जाबालदर्शनोपनिषद् ७.१०-१२*

[१८] *पतञ्जलि योगसूत्र -२.५५*

[१९] *व्यासभाष्य -२.५५*

[२०] *महर्षि दयानन्द सरस्वती – ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, पृ.२०३*

श्री भाणदेवजी के मत में, जब तक साधक का चित्त बाह्य जगत् के विषयों में रत होता है, तब तक वह अध्यात्मपथ पर आगे नहीं बढ़ सकता। अपने चित्त का विषयों से संपर्क इन्द्रियों द्वारा होता है। साधारण रूप से इन्द्रियाँ विषयोन्मुखी होती हैं। यह सामान्य प्रक्रिया जब विपरीत होकर इन्द्रियाँ चित्तस्वरूपाकार धारण कर ले तब प्रत्याहार होता है। उसके बाद साधक के लिए ध्यानादि अंतरङ्ग योग के द्वार खुल जाते हैं।[२१]

वर्तमान में आसन, प्राणायाम को ही योग समझकर किया जाता है। वह करते समय भी अपना ध्यान अपने श्वासोच्छश्वास की गति की ओर होना चाहिये। जिस स्थान में यौगिक क्रिया हो रही हो, उस ओर वायु को आकृष्ट करना चाहिये। यह प्रत्याहार की परिभाषा और क्रियाविधि समझकर धीरे धीरे उनका आचरण करके उसको जीवनशैली बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, तभी यौगिक क्रियाएँ विशेष लाभदायक बनेंगी। यह निःसन्देह बात है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. पतञ्जलि ना योगसूत्रो, अनुवादक : रामकृष्ण तुलजाशंकर व्यास, प्रकाशक : सं. सा. अकादमी, गुजरात राज्य
२. श्री योगकौस्तुभ–पूज्यपाद आचार्यश्री श्रीमन्नथुराम शर्मा, प्रकाशकः आनंदाश्रम, बिलखा
३. अष्टांग योग-स्वामी देवव्रत सरस्वती, प्रकाशकः आर्ष योग संस्थान, मिर्जापुर, फ़रीदाबाद, हरियाणा
४. श्रीमद्भगवद्गीता
५. योग की राह पर, डॉ. नरेन्द्र शर्मा, प्रकाशक : श्रीनिवास पब्लिकेशन, जयपुर
६. जाबालदर्शनोपनिषद् – पूज्य रामशर्मा आचार्य, प्रकाशकः गायत्री परिवार, हरिद्वार

~~~~~~~~~~

[२१] श्री भाणदेवजी – योगविद्या , पृ . ५७, प्रकाशक : प्रवीण पुस्तक भण्डार, राजकोट
~~~~~~~~~~